प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में अर्थव्यवस्था एवं औद्योगिक शिक्षा का स्वरुप

शालिनी मिश्रा[1]

सारांश:
औद्योगिक शिक्षा का मानव सभ्यता पर गहरा प्रभाव रहा है और भविष्य में भी रहेगा। इक्कीसवीं सदी में तो औद्योगिक शिक्षा ने एक नया समाज गढ़ने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। पूंजी या शारीरिक श्रम की अपेक्षा ज्ञान प्रमुख उत्पादन स्त्रोत बन गया है। बीते दशक में सूचना युग के जन्म के बाद हर तरफ औद्योगिक शिक्षा के नवीन नाम सामने आये हैं, नालेज इकानॉमी, नॉलेज जॉब, नॉलेज वर्कस्, नॉलेज मैनेजमेंट, नालेज बेसड क्वालिटी ऑफ लाईफ का शोर मचा हुआ है। प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था- कृषि-आधारित थी, जहाँ अधिकांश जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न थी।
सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर वैदिक काल तक, कृषि मुख्य व्यवसाय बना रहा। समाज में विभिन्न वर्गों के लोग जैसे किसान, व्यापारी, और कारीगरों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इस दौरान, शिल्प और हस्तकला उद्योगों में भी उन्नति हुई। विशेषकर कपड़ा, धातु और आभूषण उद्योगों में। व्यापार की दृष्टि से भारत का समुद्री मार्गों और स्थलीय मार्गों के माध्यम से अन्य सभ्यताओं से व्यापारिक संबंध स्थापित था। भारत का व्यापार विशेषकर मसाले, रेशम, कपास और कीमती पत्थरों के लिए प्रसिद्ध था। प्राचीन काल में व्यापार का विकास कई महत्वपूर्ण बंदरगाहों जैसे सोपारा, कालीकट और ताम्रलिप्ति के माध्यम से हुआ।
अतः प्राचीनकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि, उद्योग और व्यापार के सहारे न केवल जीवित रही बल्कि उसने अपनी पहचान भी स्थापित की। प्राचीनकाल में हुए आर्थिक और औद्योगिक विकास ने भारत को विश्वव्यापी पहचान दिलाई।

सांकेतिक शब्द – भारतीय ज्ञान परंपरा, अर्थव्यवस्था, उद्योग, शिक्षा

प्रस्तावना

आत्म-निर्भरता की भावना से ही मनुष्य का अभ्युदय होता है और उसके जीवन का चहुँमुखी विकास समुचित रूप से होता है। प्राचीन काल में यह माना गया कि शिक्षा मनुष्य को आत्मनिर्भर बनाती है। अपने कर्मों और उत्तरदायित्वों को आत्म-विश्वास पर ही सही ढंग से निष्पन्न किया जा सकता था। इसीलिए ब्रह्मचारी में यह आत्म-विश्वास जागृत कराया जाता था कि वह भावी जीवन की भयंकर कठिनाइयों में भी स्थिर-मति रह सके। इसी विश्वास के साथ वह गुरु के सान्निध्य में रहकर विभिन्न कार्यक्षम विषयों की जानकारी प्राप्त करता और अपने अद्भुत साहस का परिचय देता था। भविष्य के संकटमय जीवन को अपने अनुकूल बनाने में उसकी आत्मनिर्भरता ही उसकी एकमात्र सहायक होती थी। ब्रह्मचारी के लिए आत्मनिर्भरता के लिए आत्मसंयम की अपेक्षा की जाती थी।

साहित्यिक शिक्षा का क्षेत्र तथा उपयोगिता सीमित होने के कारण उसके साथ-साथ या उसकी अपेक्षा औद्योगिक शिक्षा की आवश्यकता समझी गयी। इस प्रकार की शिक्षा के प्राप्त होने से विद्यार्थियों को जीविकोपार्जन के अन्य साधन प्राप्त होते हैं। इसमें किसी व्यवसाय की विधिवत् शिक्षा प्रदान की जाती है। औद्योगिक शिक्षा के लिये उच्च कोटि की सम्यक् तथा अनुशासित अध्ययनशीलता, प्रशिक्षण तथा दक्षता आवश्यक है। प्रारम्भ में केवल तीन प्रकार के पांडित्यपूर्ण व्यवसायों, धर्मशास्त्र, विधिशास्त्र एवं चिकित्साशास्त्र को ही मान्यता प्राप्त थी। कालान्तर में वास्तु कला, अभियांत्रिकी, शिल्पकला, अध्यापन, वनविद्या, कृषि व्यापार आदि अन्य व्यवसायों को भी मान्यता प्रदान की गयी।

[1] **शालिनी मिश्रा,** शोधार्थिनी, शिक्षाशास्त्र विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्राचीन भारत के स्मारकों एवं शिलालेखों में भारतीयों के असाधारण कौशलयुक्त उच्च कोटि के अभियांत्रिक ज्ञान के प्रमाण प्राप्त होते हैं। प्रसिद्धि प्राप्त अध्यापक अपने निवास स्थानों पर छात्रों को वास्तु, स्थापत्य, शिल्प, चित्रकला एवं संगीत आदि की शिक्षा प्रदान किया करते थे। विशेष कलाओं तथा शिल्पों का प्रशिक्षण कार्यशालाओं में दिया जाता था। शिक्षार्थी बालक बहुधा शिल्पियों से सम्बद्ध कर दिये जाते थे। व्यापारिक वर्ग अपने बच्चों के शिक्षण के लिए सामन्ती आधार पर संगठित निजी विद्यालयों की व्यवस्था करते थे। इन विद्यालयों को परम्परागत व्यवसायों का अनुसरण करना पड़ा।

उद्योग धन्धों से न केवल स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी बल्कि सामान निर्यात होने के कारण देश की समृद्धि में वृद्धि हुई। इसके साथ-साथ भारतीय शिल्पियों के उच्च कोटि के कलात्मक कौशल, व्यावसायिक शिक्षा की नियमित व्यवस्था के अस्तित्व को प्रमाणित करता है।

आज शिक्षा प्राप्त करना हर बालक का अधिकार है, इससे हम सभी सहमत हैं। शैक्षिक प्रकिया ऐसी होनी चाहिए जिससे बालकों में आधारभूत क्षमता, योग्यता और कौशलों का विकास किया जा सके, ताकि वह भावी जीवन के लिए तैयार हो सके और राष्ट्र के विकास में भागीदार हो सके। यह तभी सम्भव है जब छात्र सीखे गए ज्ञान का व्यवहारिक प्रयोग भी कर सकें। इस हेतु आज शिक्षा को सैद्धान्तिक पाठ्यक्रमों के भंवरजाल से निकलकर मजबूत व्यावसायिक आधार देने कालान्तर में वास्तु कला, अभियांत्रिकी, शिल्पकला, अध्यापन, वनविद्या, कृषि व्यापार आदि अन्य व्यवसायों को भी मान्यता प्रदान की गयी। प्राचीन भारत के स्मारकों एवं शिलालेखों में भारतीयों के असाधारण कौशलयुक्त उच्च कोटि के अभियांत्रिक ज्ञान के प्रमाण प्राप्त होते हैं। प्रसिद्धि प्राप्त अध्यापक अपने निवास स्थानों पर छात्रों को वास्तु, स्थापत्य, शिल्प, चित्रकला एवं संगीत आदि की शिक्षा प्रदान किया करते थे। विशेष कलाओं तथा शिल्पों का प्रशिक्षण कार्यशालाओं में दिया जाता था। शिक्षार्थी बालक बहुधा शिल्पियों से सम्बद्ध कर दिये जाते थे। व्यापारिक वर्ग अपने बच्चों के शिक्षण के लिए सामन्ती आधार पर संगठित निजी विद्यालयों की व्यवस्था करते थे। इन विद्यालयों को परम्परागत व्यवसायों का अनुसरण करना पड़ा। "ज्ञान अथवा विद्या से ही व्यक्ति शिल्प में निपुणता प्राप्त करता है।" व्यक्ति एवं समाज का बौद्धिक उत्कर्ष विद्या से ही संभव है। प्राचीन भारत में भौतिक की अपेक्षा बौद्धिक ज्ञान का महत्व था। उच्च विचार एवं ज्ञान, त्यागमय जीवन, आध्यात्मिक चिन्तन तथा भौतिक आकर्षण से विरक्ति मानव जीवन के मूल्य माने गये थे। शिक्षा केवल मस्तिष्क का प्रशिक्षण नहीं अपितु आत्मा का प्रशिक्षण है इसका उद्देश्य ज्ञान तथा विवेक दोनों प्रदान करना है। इसका उद्देश्य स्वतंत्र तथा विचारशील व्यक्ति का निर्माण करना, ज्ञानार्जन की अभिरूचि उत्पन्न करना, स्वावलंबी एवं आत्म निर्भर मानव बनाना, ज्ञान एवं धर्म का समन्वय करना, समाजसेवी तथा कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति उत्पन्न करना, विश्व मानव की धारणा विकसित करना है। शिक्षा और ज्ञान के कारण मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था, अपने पारिवारिक दायित्वों को निष्पन्न करता था तथा अपने उद्देश्यों को पूरा करने में सन्नद्ध हो जाता था। कार्य विभाजन के अनुसार सभी वर्णों और जातियों के भिन्न-भिन्न कर्म थे, जिनका पालन करना सभी लोगों का अपना कर्तव्य था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अपने विभिन्न कर्म थे, जिन्हें वे मनोनिवेशपूर्वक सम्पादित करते थे; यद्यपि ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब इन वर्णों के कतिपय सदस्यों ने आपत्ति काल में अपने वर्णगत कर्म का त्याग करके दूसरे वर्णों के कर्म अपना लिए क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के कर्म अपनाये और ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के, वैश्यों ने शूद्रों के और शूद्रों ने वैश्यों के। वंशानुगत पेशे का प्रचलन और कार्य क्षमता का निष्पादन सामाजिक उत्तरदायित्वों के अन्तर्गत आए, जिन्हें कालान्तर में सफलतापूर्वक पूरा किया गया। वर्तमान में भी औद्योगिक शिक्षा का सीधा संबंध देश के आर्थिक-सामाजिक विकास से माना जाता है। देश के युवाओं को औद्योगिक एवं व्यावसायिक दृष्टि से कौशल सम्पन्न बनाकर उन्हें तेजी से उभरती मानवशक्ति की आवश्यकता की पूर्ति का लाभ उठाने के लिए तैयार करना देश की प्राथमिकता है। हमारे देश के सामने अनेकों चुनौतियाँ हैं, उनमें से सबसे प्रमुख चुनौती है आदर्श

जीवनस्तर को बनाये रखने के लिए करोड़ों लोगों को लाभदायक रोजगार उपलब्ध कराना। शिक्षा को जीवन से जोड़ने, शिक्षा तथा रोजगार की कड़ी को समेकित करने; तथा युवाओं को आत्मनिर्भर बनाने के महत्वपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति हेतु देश भर में औद्योगिक व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान, विकास, प्रशिक्षण, विस्तार, परामर्श संबंधी अनेकों गतिविधियाँ वृहत स्तर पर कार्यान्वित की जा रही हैं।

प्राचीनकाल में औद्योगिक शिक्षा का स्वरूप- किसी व्यक्ति को प्रशिक्षित करने हेतु दी जाने वाली विद्या औद्योगिक शिक्षा है। औद्योगिक शिक्षा का अर्थ है किसी शिल्प, ट्रेड, व्यवसाय या प्रोफेशन को अपनाने के लिए आवश्यक ज्ञान, अवबोध, कौशलों व अभिवृत्तियों की शिक्षा देना। औद्योगिक शिक्षा की विशेषता है कि यह व्यक्ति को अनेक सुसम्बन्धित व्यवसायों के लिए तैयार करती है। इसके पाठ्यचर्या की अवधि निर्धारित होती है। इसमें हस्त-कौशलों की तुलना में वैज्ञानिक नियमों के अवरोध तथा उपयोग की शिक्षा अधिक दी जाती है। वर्तमान में औद्योगिक शिक्षा के अन्तर्गत व्यावसायिक तथा प्राविधिक शिक्षा ग्रहण की जाती है अर्थात् जीविकोपार्जन हेतु किसी व्यवसाय की सामान्य शिक्षा देना व्यावसायिक शिक्षा है।

प्राचीन काल में औद्योगिक शिक्षा का स्वरूप अत्यंत व्यावहारिक और अनुभव-आधारित था। यह मुख्यतः गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से संचालित होती थी, जहाँ शिष्य अपने गुरु से विभिन्न प्रकार की तकनीकी और हस्तकला संबंधी ज्ञान प्राप्त करते थे। इस शिक्षा का उद्देश्य न केवल रोजगार के साधनों को विकसित करना था, बल्कि समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न उद्योगों का विकास करना भी था।

1. गुरु-शिष्य परंपरा- शिक्षा मुख्यतः गुरुकुलों और आश्रमों में दी जाती थी, जहाँ शिष्य अपने गुरु के साथ रहते थे और उनसे विभिन्न कौशल सीखते थे।

2. हस्तकला और शिल्पकला- विभिन्न प्रकार की हस्तकला, जैसे कि बुनाई, कढ़ाई, मूर्तिकला, धातुकर्म, और गहनों की निर्माण कला, का प्रशिक्षण दिया जाता था। प्राचीन भारतीय समाज में हस्तकला और शिल्पकला का विशेष महत्व था। वस्त्र निर्माण, बुनाई, कढ़ाई, धातुकर्म, मिट्टी के बर्तन, मूर्तिकला, और आभूषण निर्माण जैसे उद्योग प्रमुख थे। भारतीय कारीगरों की कारीगरी विश्व प्रसिद्ध थी और इनकी वस्तुओं की मांग दूर-दूर तक थी।

3. प्रशिक्षण की अवधि- शिक्षा की अवधि निश्चित नहीं थी। शिष्य तब तक प्रशिक्षण प्राप्त करते रहते थे जब तक वे पूरी तरह से कौशल में निपुण नहीं हो जाते थे।

4. व्यावहारिक ज्ञान- शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यावहारिक ज्ञान और कौशल को बढ़ावा देना था। सिद्धांत के मुकाबले, शारीरिक कार्य और अभ्यास पर अधिक जोर दिया जाता था।

5. व्यापार और वाणिज्य- प्राचीन भारत एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र था। जलमार्ग और स्थलमार्ग के माध्यम से भारत का व्यापार मेसोपोटामिया, मिस्र, रोम, चीन, और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ होता था। व्यापार में मसाले, कपड़े, धातुएँ, और रत्न शामिल थे। बंदरगाह शहर, जैसे लोटल, ताम्रलिप्ति, और मूसिरिस, महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र थे।

6. जाति और वंश पर आधारित शिक्षा- प्राचीन काल में शिक्षा का स्वरूप जाति और वंश पर भी निर्भर करता था। जैसे, ब्राह्मण वेद और पुरोहिताई की शिक्षा ग्रहण करते थे, क्षत्रिय युद्धकला, वैश्य व्यापार और शूद्र सेवा और हस्तकला में निपुण होते थे।

7. कृषि- प्राचीन भारत में कृषि प्रमुख आर्थिक गतिविधि थी। सिंचाई के उन्नत तरीकों, जैसे कि नहरों, कुओं और तालाबों के माध्यम से खेती को बढ़ावा दिया जाता था। प्रमुख फसलों में गेहूं, चावल, जौ, दालें, और कपास शामिल थे। कृषि उत्पादों का उत्पादन सिर्फ स्थानीय उपयोग के लिए ही नहीं, बल्कि व्यापार के लिए भी किया जाता था।

8. धातुकर्म- प्राचीन भारत में धातुकर्म एक प्रमुख उद्योग था। तांबा, कांसा, लोहा, और सोना जैसे धातुओं का उपयोग औजार, हथियार, और आभूषण बनाने में किया जाता था। धातुकर्म के उन्नत तकनीकों के कारण भारतीय हथियार और उपकरण काफी प्रसिद्ध थे।

9. वस्त्र उद्योग- भारत में वस्त्र उद्योग बहुत विकसित था। कपास, रेशम, और ऊन के वस्त्र न केवल देश के भीतर बल्कि विदेशों में भी निर्यात किए जाते थे। भारतीय वस्त्र, खासकर मलमल, रेशम, और सूती कपड़े, अत्यधिक मांग में थे।

10. व्यापार और वाणिज्य- प्राचीन भारत एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र था। जलमार्ग और स्थलमार्ग के माध्यम से भारत का व्यापार मेसोपोटामिया, मिस्र, रोम, चीन, और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ होता था। व्यापार में मसाले, कपड़े, धातुएँ, और रत्न शामिल थे। बंदरगाह शहर, जैसे लोटल, ताम्रलिप्ति, और मूसिरिस, महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र थे।

11. शहरीकरण और नगर व्यवस्था- प्राचीन भारत में नगरों का विकास हुआ, जो औद्योगिक और व्यापारिक गतिविधियों के केंद्र थे। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, पाटलिपुत्र, और वाराणसी जैसे नगर अपने उन्नत शहरीकरण और व्यवस्थित अर्थव्यवस्था के लिए प्रसिद्ध थे।

12. मुद्रा और बैंकिंग प्रणाली- प्राचीन भारत में मुद्रा का उपयोग व्यापार में होता था। सिक्कों का चलन प्रचलित था और यह ताम्र, रजत, और सुवर्ण से बनाए जाते थे। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में बैंकिंग और वित्तीय लेन-देन के प्रमाण मिलते हैं, जिससे संकेत मिलता है कि ऋण, जमा, और अन्य वित्तीय सेवाएँ उपलब्ध थीं।

वर्तमान औद्योगिक शिक्षा प्रणाली यद्यपि वैदिक शिक्षा प्रणाली से पूर्णतः भिन्न दृष्टिगोचर होती है, फिर भी वर्तमान शिक्षा को नियोजित करने व इसकी अनेकानेक समस्याओं का समाधान खोजने की प्रत्येक चेष्टा में प्राचीनतम शिक्षा के मूलभूत आधारों पर ध्यान देना सार्थक सिद्ध हो सकता है। वैदिक शिक्षा के आदर्शो अर्थात् श्रद्धा, भक्ति, सेवा, आदर, आत्म-अनुशासन, सादा जीवन उच्च विचार, ब्रह्मचर्य, नैतिक बल आदि का अनुसरण करके वर्तमान समाज की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था की जा सकती है। पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के अन्धानुकरण में हम अपने पुरातन आदर्शों को विस्तृत करते जा रहे है, शिक्षा हमारे जीवन से दूर हटती जा रही है। छात्र असंतोष, अनुशासन हीनता, बेरोजगारी, निर्धनता, वर्ग संघर्ष, सामाजिक बुराइयां, राष्ट्रीय विघटन, भाषायी समस्यायें जैसी अनुत्तरित समस्यायें दिन-प्रतिदिन विकराल रूप धारण करती जा रही है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली के आदर्श तत्वों को वर्तमान शिक्षा में समावेश करके इन समस्याओं का समाधान सम्भव है। जीवन के वास्तविक मूल्यों, गुणों व आदर्शों का अनुसरण करके छात्रगण भारतवर्ष की समृद्धि तथा वैभव का पुनरोद्धार कर सकेंगे। जब हमारी शिक्षा में प्राचीन सनातन आदर्शों को सम्मिलित किया जायेगा तब ही हमारी शिक्षा प्रणाली अतीत की भांति विदेशी छात्रों को अपनी तरफ आकर्षित कर सकेगी तथा भारतीय शिक्षा के गौरव को पुनःस्थापित कर सकेगी।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली दो स्तरों में विभाजित थी परा एवं अपरा विद्या। परा विद्या में आध्यात्मिक ज्ञान एवं अपरा विद्या में औद्योगिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। वर्तमान में इसकी उपादेयता तीन स्वरूपों में मिलती है साहित्यिक, वाणिज्यिक एवं विज्ञानपरक। प्राचीनकाल में वैदिक कालीन शिक्षा निःशुल्क प्रदान की जाती थी, आधुनिक काल में इसकी उपादेयता बनी हुई है। प्राचीन काल में वैदिक एवं बौद्ध कालीन शिक्षा के विशिष्टीकरण पर बल दिया गया। प्राचीन काल में वैदिक एवं बौद्ध कालीन शिक्षा गुरुकुलों, मठों, विहारों में दी जाती थी, जहाँ आवास, भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था निःशुल्क थी। प्राचीन काल में वैदिक एवं बौद्ध कालीन शिक्षण संस्थाएँ प्रकृति के सुरम्य गोद में स्थित होते थे। प्राचीन काल में वैदिक कालीन शिक्षा में नैतिक, चरित्रिक एवं आध्यात्मिक विकास पर बल दिया जाता था, प्राचीन काल में वैदिक कालीन शिक्षा के केन्द्र तक्षशिला,

नालंदा एवं विक्रमशिला जैसे उच्च संस्थान थे। औद्योगिक शिक्षा के लिए वर्तमान में भी बड़े-बड़े संस्थान स्थापित किये गये हैं।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में वैदिक कालीन औद्योगिक शिक्षा के व्यवहारिक एवं सैद्धांतिक ज्ञान पर विशेष ध्यान दिया जाता था जिसकी उपादेयता वर्तमान में भी है। प्राचीन काल में वैदिक में विशेष तौर पर कला, कौशल एवं व्यवसायों की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। वर्तमान में यह शिक्षा विज्ञान तथा तकनीकी के माध्यम से दी जा रही है जो आज के युग के सर्वोत्तम औद्योगिक शिक्षा है। वर्तमान समय में औद्योगिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जा रहा है।

शोध-निष्कर्ष

राष्ट्र के प्रगति में व्यावसायिक शिक्षा का बहुत योगदान होता है। आधुनिक युग में कोई भी राष्ट्र व्यावसायिक शिक्षा के बिना विकसित राष्ट्र नहीं बन सकता। पूर्व राष्ट्रपति डा० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम के विचार प्रासंगिक हैं- " किसी भी राष्ट्र की खुशहाली और प्रगति तकनीकी और रोजगारपरक शिक्षा की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। भारत एक विकासशील देश है। गरीबी और बेरोजगारी इसकी प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है। भारत में पर्याप्त मानवीय शक्ति है, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के द्वारा इस शक्ति का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है।'

व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों को आधुनिक स्वरूप दिया जाए। पाठ्यकम राष्ट्र के रोजगार क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। पाठ्यक्रम में प्रायोगिक कार्यों पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है ताकि व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद कुशल व्यक्ति अपना स्वतंत्र व्यवसाय प्रारम्भ करके बेरोजगारी से मुक्ति प्राप्त कर सकें।

भारतीय ज्ञान परंपरा में औद्योगिक शिक्षा केवल आर्थिक प्रगति तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय संतुलन को भी प्रोत्साहित करती थी। आधुनिक समय में, इस परंपरा से प्रेरणा लेकर व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा को कौशल आधारित और पर्यावरण अनुकूल बनाया जा सकता है।

वैदिक काल में तकनीकी और रोजगार परक शिक्षा पर बल दिया जाता था आधुनिक काल में भी इसी को अमल में लाया जा रहा है। भारत में पर्याप्त मानवीय शक्ति है, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के द्वारा इस शक्ति का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। यह धारणा प्राचीन काल से भारत में पायी गयी। अतः भारतीय शिक्षा की सांस्कृतिक विरासत का ज्ञान देश के प्रत्येक नागरिक के लिये अपरिहार्य है। कोई भी शिक्षा व्यवस्था तब ही सफल होने का दावा कर सकती है जब उसका आधार देश की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हो और वह उस देश की जनता की आकांक्षाओं को पूर्ण करने योग्य हो। प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा के औद्योगिक शिक्षा की संस्कृति को वर्तमान में बनाये रखने की आवश्यकता है।

संदर्भित ग्रन्थ –

- अल्तेकर, ए.एस. (1957), प्राचीन भारत में शिक्षा, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी।
- अग्रवाल, ए.एस. (1990), शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त, राजेश पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
- चटर्जी, सीताराम (1970), शिक्षा दर्शन, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ।
- पाण्डेय, रामशकल (2008), शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- डॉ. शिवस्वरूप,(2000); सहायकृत प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- प्रेमनाथ (1969), शिक्षा के सिद्धान्त, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद।

- मिश्र, जयशंकर (1980), प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, कदमकुआं, पटना।
- एम.एन. मजूमदारकृत ए हिस्ट्री ऑफ एजूकेशन इन एन्शियेण्ट इण्डिया।
- मुखर्जी, आर.के. (1951), प्राचीन भारतीय शिक्षा, मिलन एण्ड कं., बम्बई।
- कृष्ण कुमारकृत (2000); प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति, नयी दिल्ली।